IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"पौराणिक साहित्य में योग की महत्ता और अर्थ की विवेचना"

Dr. Satender Dutt Amoli

(Associate Professor)

Department of Yogic Science

Sparsh Himalaya University, Dehradun (Formerly Himalayiya University) Uttarakhand.

Bhawani Prasad

(Research Scholar)

Department of Yogic Science

Sparsh Himalaya University, Dehradun (Formerly Himalayiya University) Uttarakhand

शोध सारांश : पुराणों में योग का महत्त्व अनेक दृष्टि से जाना जा सकता है। पुराणों में योग का विवेचन अत्यन्त शास्त्रीय रीति से किया गया है, पुराणों के अनुसार योग ही सर्वोत्तम मोक्षोपाय है। पुराणों में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का सम्यक रूप से विवेचन किया गया है। योग साक्षात् मोक्ष का कारण न होने पर भी साक्षात् मोक्ष के कारक 'ज्ञान' की प्राप्ति में साधन के रूप में अर्थात योग ज्ञान का हेतु है। या यों कहा जा सकता है, कि मुक्त होने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, ज्ञान ब्रह्म का प्रकाशक है। उस ब्रह्म में चित्त के एकाग्र होने को योग कहा जाता है। चित्त की एकाग्रता योग का विषय है। विषयों से निवृत्ति योग के द्वारा ही सम्भव है। व्यवहार और परमार्थ के साधन रूप इस भौतिक शरीर से योग की साधना निश्चय ही मुक्ति की ओर अग्रसर कर सकती है।

कूट शब्द : पुराण, योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग

प्रस्तावना :

भारतीय धर्म एवं संस्कृति के एक महत्वपूर्ण ज्ञान के स्रोत के रूप में पुराणों को बहुत महत्त्व दिया गया है, वहीं दूसरी ओर दर्शन शास्त्र परंपरा में योग दर्शन को भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जब हम भारतीय संस्कृति के पौराणिक साहित्य में योग के स्वरूप का अध्ययन करते हैं; तो हम पाते हैं, कि वहाँ विस्तृत रूप से योग का उल्लेख किया गया है। जिसमें योग के अर्थ के साथ साथ उसके महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया है। पौराणिक साहित्य में योग को व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि पौराणिक साहित्य जन सामान्य के मानस पटल को संतुष्ट करता हुआ व्यवहार में प्रयोग किया जाता है। वहीं यदि हम योग के तत्वों का अवलोकन करें तो अन्य भारतीय दर्शनों की अपेक्षा योग दर्शन को सहज और व्यावहारिक माना जाता है। अतः पौराणिक साहित्य और योग को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है।

पुराणों में वर्णित योग की महत्ता :

पुराणों में योग का महत्त्व अनेक दृष्टि से जाना जा सकता है। पुराणों में योग का विवेचन अत्यन्त शास्त्रीय रीति से किया गया है, पुराणों के अनुसार योग ही सर्वोत्तम मोक्षोपाय है। पुराणों में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का सम्यक रूप से विवेचन किया गया है। कर्मयोग, ज्ञानयोग से हजारों गुना अधिक प्रशस्त है, क्योंकि ज्ञान कर्मयोग से ही प्रादुर्भूत होता है, अतः वह परमपद है। कर्मयोग के अभ्यास में संलग्न मनुष्य भी उस अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। जो तत्त्वज्ञानियों को प्राप्त होता है। पुराणों में यत्र-तत्र योग के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। भविष्य पुराण में कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के विषय में कहा गया है,

कामात्मता न प्रशस्ता न वेहास्याप्यकामता ।

काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः । ।[1]

भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्रलये समुपस्थिते ।।

ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रविमुच्यते ।।[2]

अर्थात काम के प्रति आसक्ति उचित नहीं है, न ही साधन के प्रति आसक्ति उचित है। वैदिक कर्मों के प्रति कर्तव्य बोध ही, वैदिक कर्मयोग है। तथा प्रलय के समय अपार सुख भोगने के बाद ज्ञानयोग प्राप्त करके मनुष्य शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

अग्निपुराण में योग के महत्त्व को निम्न उदाहरण द्वारा दर्शाया है, जिस प्रकार बत्ती, तैलपात्र और तैल इन तीनों के संयोग से ही दीपक की स्थिति है, इनमें से एक के अभाव में दीपक का अस्तित्व रह नहीं हो सकता, उसी प्रकार योग और धर्म से ही शरीर की स्थिति है, इसके बिना विकार की उत्पत्ति देखी जाती है, और इस प्रकार अकाल में ही प्राणों का क्षय हो जाता है, यथा –

वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः ।

विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ।।[3]

पुराणों से योग की महत्ता प्रमाणित रूप से सिद्ध हो जाती है। योग साक्षात् मोक्ष का कारण न होने पर भी साक्षात् मोक्ष के कारक 'ज्ञान' की प्राप्ति में साधन के रूप में अर्थात योग ज्ञान का हेतु है। या यों कहा जा सकता है, कि मुक्त होने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, ज्ञान ब्रह्म का प्रकाशक है। उस ब्रह्म में चित्त के एकाग्र होने को योग कहा जाता है। चित्त की एकाग्रता योग का विषय है। विषयों से निवृत्ति योग के द्वारा ही सम्भव है। व्यवहार और परमार्थ के साधन रूप इस भौतिक शरीर से योग की साधना निश्चय ही मुक्ति की ओर अग्रसर कर सकती है।

विष्णुपुराण के अनुसार "जो सदैव एकांत में रहकर परम सत्य का ध्यान करते हैं, और जो उस परम स्थान के सदा अभिलाषी हैं, वे ही योगी हैं।"[4] अविद्या से प्राप्त होने वाले दुःखों को नष्ट करने वाला योग के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं है। अधिकतर धर्म शास्त्रों में आत्मा और परमात्मा के संयोग को योग कहा जाता है। जैसे भी हो योग के यथार्थस्वरूप और उसके महत्त्व को निर्वाण हेतु पुराणों ने स्वीकार किया है। इसके विशद् विवेचन में सभी पुराणों ने यथाशक्य अपना-अपना विचार प्रस्तुत किया है। लोलुपता, रोग, निष्ठुरता का पूर्ण अभाव, शरीर में सुगन्ध, मल और मूत्र का कम हो जाना, शरीर में कान्ति,

मन में प्रसन्नता, वाणी में कोमलता आदि योग सिद्धि के प्रारम्भिक चिन्ह हैं। चित्त में एकाग्रता, ब्रह्मचिन्तन परायणता, प्रसाद शून्यता, पवित्रता, एकान्त प्रेम तथा जितेन्द्रियता से सम्पन्न साधक निश्चय ही आत्मज्ञान रूप योग में निष्णात हो जाता है। वहीं पाशुपत योग निश्चय ही शिवत्व को प्राप्त कराता है। इस अष्टांग योग की कल्पना शिव जी ने की है। उस योग से सहसा शैवी बुद्धि प्रकट होती है।[5] शिवमहापुराण के अनुसार -

निरुद्धवृत्त्यंतरस्यं शिवे चित्तस्य निश्चला ॥

या वृत्तिः स समासेन योगः स खलु पञ्चधा ॥[6]

अर्थात जिनकी गतिविधियाँ नियंत्रित होती हैं, और मन भगवान शिव पर स्थिर रहता है, उसे पाँच गुना योग की प्राप्ति होती है। योग के वैसे कई भेद हैं, जैसे- कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग, मंत्रयोग, लययोग, राजयोग इत्यादि पर सर्वश्रेष्ठ योग वह है, जिसमें अन्तरात्मा से परमेश्वर में लीन होकर उनका निरन्तर भजन होता रहे।

विष्णु पुराण में केशिध्वज और खाडिक्य की कथा द्वारा भी हमें योग के महत्त्व का ज्ञान होता है। उसके अनुसार स्वाध्याय से योग का और योग से स्वाध्याय का आश्रय करें। इस प्रकार स्वाध्याय और योग रूप सम्पत्ति से परमात्मा प्रकाशित (ज्ञान के विषय) होते हैं, क्योंकि ब्रह्मस्वरूप परमात्मा को चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, उन्हें देखने के लिए स्वाध्याय और योग ही दो नेत्र है,[7] यथा -

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत् ।

स्वाध्याययोग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।।[8]

वायु पुराण[9] में योग का महत्त्व और उसकी आवश्यकता पर बहुत जोर दिया गया है, और सभी श्रेणियों के मनुष्यों को उसकी प्रेरणा दी गई है। योग में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक क्रियाओं का महत्त्व अधिक है। इस प्रकार सभी पुराणों ने योग के महत्त्व को बताया एवं स्वीकारा भी है।

पुराणों में योग का अर्थ :

जहाँ पातञ्जल योगसूत्र और उसके व्याख्याकारों का मत युज् समाधौ के आधार पर योग के समाधि अर्थ के पक्ष में है, वहीं पुराणों में युजिर योगे के अनुसार योग का अर्थ सम्बन्धवाचक ग्रहण करना अधिक उपयुक्त लगता है। स्कन्दपुराण में स्पष्ट उल्लेख है -

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः ।

स नष्टसर्वसंकल्पः समाधिरभिधीयते ।।

परमात्मात्मनोर्योऽयमविभागः परन्तपः ।

स एव तु परो योगः समासात्कथितस्तव ।।[10]

स्कन्दपुराण का ही निम्नलिखित श्लोक इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है-

संयोगस्त्वात्ममनसोर्योग इत्युच्यते बुधैः।

प्राणापानसमायोगो योगइत्यपि कैश्चन ।।

विषयेन्द्रियसंयोगो योग इत्यप्यपण्डितैः ।

विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं मोक्षश्चदूरतः ।।[11]

योग का मिलने या जुड़ने के भाव में प्रयोग अन्य पुराणों में भी मिलता है; इस सन्दर्भ में कुर्म पुराण[12], ब्रह्मपुराण[13], विष्णुपुराण[14] का नाम भी उल्लेखनीय है। पुराणों के अतिरिक्त अन्य शास्त्रकारों ने भी योग शब्द का व्यवहार 'संयोग' अर्थ में किया है। महानिर्वाण तंत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति का नाम इस प्रसंग में स्मरणीय है। विष्णुपुराण[15] में आत्मप्रयत्न सापेक्ष मन की विशिष्ट गति को योग कहा गया है, तथा लिंग पुराण[16] में आत्मा की प्राप्ति को योग कहा गया है।

सन्दर्भ सूची :

---

[1] भविष्यपुराणम् : (ब्राह्मपर्व)/07/ 49

[2] भविष्यपुराण : (ब्राह्मपर्व)/162/07

[3] अग्निपुराण : 376/19

[4] विष्णुपुराण : 1/6/39

[5] शिवमहापुराण : वायवीयसंहिता/पूर्व भाग/32/7

[6] शिवमहापुराण : वायवीयसंहिता/उत्तर भाग/37/6

[7] विष्णु पुराण : 6/6/3

[8] विष्णु पुराण : 6/6/2

[9] वायु पुराण : प्रथम खण्ड (भूमिका)

[10] स्कन्दपुराण : काशीखण्ड/41/27

[11] स्कन्दपुराण : काशीखण्ड/41/48-49

[12] कुर्म पुराण : 2/11/12

[13] ब्रह्मपुराण : 127/29

[14] विष्णुपुराण : 6/7/11

[15] विष्णुपुराण : 6/7/31

[16] लिंग पुराण : 8/3